Sanvahak (संवाहक)

An International Peer Reviewed, Refereed, Indexed, Multidisciplinary (All Discipline/Subjects), Multilingual (All Languages) & Quarterly Research journal

ISSN : 3108-1347 (Online)

IIFS Impact Factor-5.25

Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2026

Page No.- 31-35

©2026 **Sanvahak**

https:// sanvahak.gyanvividha.com

Author's:

1. विकास

शोध-छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड.

2. डॉ. बबलू वेदालंकार

असि. प्रो., दर्शनशास्त्र विभाग, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड.

Corresponding Author :

विकास

शोध-छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड.

मानवीय जैव सृष्टि एवं विकास की अवधारणा : सांख्य-योग दर्शन के विशेष सन्दर्भ में

शोध-सार : सांख्य-योग के अनुसार, मनुष्य जरायुज सृष्टि का प्राणी है। मनुष्य के लिए कहा गया है कि **'न देहमात्रतः कर्माधिकाररित्वं वैशिष्ट्यश्रुतेः'** अर्थात् केवल शरीरधारण करने मात्र से ही कर्म का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है। कर्म करने के लिए मनुष्य को शरीर के अतिरिक्त अनेक योग्यताएं विकसित करनी होती है, अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करनी होती है। मनुष्य की इस विकास यात्रा को जैविक परिवर्तन की दृष्टि से देखा जा सकता है। विकास की यह यात्रा एक जन्म से पूर्ण होने वाली नहीं है। इसके लिए जन्मांतर का विचार वैदिक वाङ्मय में स्पष्टतः मिलता है। जीव की यह विकास यात्रा ही मनुष्य में जैविक परिवर्तन का आधार कही जा सकती है। यह जैविक परिवर्तन केवल अपने जैसे प्राणियों को उत्पन्न करना नहीं अपितु अपने से जैविक रूप से उन्नत मनुष्य को उत्पन्न करना है। ऋग्वेद में कहा गया है **'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्'** अर्थात् मनुष्य बन और उन्नत सन्तानों को उत्पन्न कर। यही मनुष्य का वास्तविक जैविक उद्देश्य कहा जा सकता है। इस उद्देश्य की सिद्धि केवल जन्म के पश्चात् और मृत्यु से पूर्व ही सम्भव है। मृत्यु के पश्चात् आत्मा अपने अपूर्व के आधार पर केवल श्रेष्ठ गर्भ प्राप्ति की इच्छा ही कर सकता है और यह इच्छा भी तभी पूर्ण हो सकती है, जब उसने पूर्व जन्म के समय अपने से उन्नत पुत्र-पुत्रीयों को जन्म दिया हो। अतः प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से मनुष्य के समाने मुक्ति के लिए केवल एक ही विकल्प दिखाई देता है कि वह उन्नत रुप से जैविक सन्तानों को उत्पन्न करे। इस उद्देश्यपूर्ति के लिए भारतीय ऋषियों ने जिस विधि को अपनाया उसे ही 'योग' के रूप में समाज को दिया। योग के द्वारा मनुष्य अपने शरीर में उन सभी क्षमताओं और योग्यताओं को विकसित कर सकता है, जिनके द्वारा वह अपने सर्वोच्च लक्ष्य अर्थात् मुक्ति को प्राप्त कर सकता है, साथ ही योग द्वारा अर्जित अपनी क्षमताओं और योग्यताओं को अपनी सन्तति में स्थानान्तरित कर मानव जाति का कल्याण भी कर सकता है।

महत्त्वपूर्ण शब्दावली : जीनोटाइप, फेनोटाइप, जरायुज प्राणी, सांकल्पिक और सांसिद्धिक सृष्टि।

शोध-प्रस्तावना : मानव सभ्यता का इतिहास मूलतः स्वयं के अस्तित्व, जगत् की उत्पत्ति और जीवन के क्रमिक विकास को समझने की उत्सुकता का इतिहास रहा है। आधुनिक जीवविज्ञान (Biological Science) जहाँ जैव-विकास (Biological Evolution) की प्रक्रिया को भौतिक, रासायनिक एवं जैविक परिवर्तनों के माध्यम से स्पष्ट करता है, वहीं प्राचीन भारतीय मनीषा ने दर्शन और अध्यात्म के माध्यम से सृष्टि एवं जीवन के विकास की अत्यंत सूक्ष्म एवं व्यापक व्याख्या प्रस्तुत की है। भारतीय दर्शन की षड्दर्शन परम्परा में सांख्य और योग दर्शन का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। ये दोनों दर्शन एक ही तत्त्वमीमांसीय धरातल को साझा करते हैं, जहाँ सांख्य सिद्धान्त पक्ष प्रस्तुत करता है और योग उसका व्यावहारिक अर्थात् प्रायोगिक पक्ष के द्वारा मानवीय क्षमताओं का विकास करता है।

सांख्य-योग दर्शन की मूल मान्यता 'सत्कार्यवाद' और 'परिणामवाद' पर आधारित है, जिसके अनुसार कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व कारण में सूक्ष्म रुप से विद्यमान रहता है। इस दर्शन में सम्पूर्ण भौतिक एवं मानसिक जगत् का मूल कारण 'प्रकृति' अर्थात् - सत्, रज, तम को माना गया है। चेतन तत्त्व 'पुरुष' के सानिध्य से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होता है और सूक्ष्म तत्त्व महत अर्थात् बुद्धि से स्थूल पंचमहाभूत की ओर सृष्टि विकास का क्रम प्रारम्भ होता है। महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में "जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्" (योगसूत्र 4/2) के माध्यम से एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति में रुपांतरण और जैव-विकास के सूक्ष्म नियमों का संकेत दिया है।

आधुनिक युग में जहाँ चार्ल्स डार्विन और उत्तर-डार्विनवादी सिद्धान्तों ने जैव-विकास को यादृच्छिक उत्परिवर्तन (Random Mutation) और प्राकृतिक चयन (Natural Selection) के रूप में देखा है, वहीं सांख्य-योग की दृष्टि विकास को केवल भौतिक न मानकर चित्त, मन, और चेतना के विकास से जोड़कर सप्रयोजन (Teleological) मानती है। अतः आधुनिक विज्ञान और प्राचीन दर्शन के मध्य इस वैचारिक सेतु का अध्ययन करना अत्यंत प्रासंगिक एवं आवश्यक हो जाता है।

शोध का उद्देश्य एवं शोध पद्धति : प्रकृत शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य सांख्य-योग दर्शन के आलोक में 'मानवीय जैव सृष्टि एवं विकास' की अवधारणा का अनुशीलन करना तथा इसके मूल सिद्धान्तों की प्रासंगिकता को आधुनिक विकासवादी सिद्धान्तों के सन्दर्भ में रेखांकित करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रस्तुत अध्ययन में मुख्य रूप से गुणात्मक शोध दृष्टिकोण (Qualitative Research Approach) को अपनाया गया है, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित पद्धतियों व स्रोतों का समन्वित प्रयोग किया गया है –

- **पाठ्य-समीक्षात्मक एवं दार्शनिक विश्लेषणात्मक पद्धति** – इसके माध्यम से सांख्य-योग परम्परा के प्राथमिक आर्ष ग्रंथों—जैसे सांख्यकारिका, पातंजल योगसूत्र, व्यासभाष्य एवं तत्त्ववैशारदी—के मूल संस्कृत पाठों का गम्भीर अनुशीलन करते हुए सत्कार्यवाद, परिणामवाद तथा त्रिगुण सिद्धान्त का तार्किक विश्लेषण किया गया है।
- **तुलनात्मक पद्धति –** इसके द्वारा सांख्य-योग के 'सूक्ष्म से स्थूल तत्त्व-परिणाम' एवं महर्षि पतंजलि के सिद्धान्त की तुलना आधुनिक जीवविज्ञान के 'जैव-विकास सिद्धान्त' से करते हुए दोनों के वैचारिक साम्य और वैषम्य का मूल्यांकन किया गया है।
- **स्रोतों का संयोजन** – अध्ययन हेतु प्राथमिक स्रोतों के रूप में शास्त्रीय मूल ग्रंथों व भाष्यों तथा द्वितीयक स्रोतों के रूप में प्रामाणिक शोध-प्रबंधों, संदर्भ-पुस्तकों एवं पीयर-रिव्यूड (Peer-reviewed) शोध-पत्रिकाओं का प्रयोग किया गया है।

विषय विश्लेषण एवं विवेचन : जैव-सृष्टि एवं विकास या जैविक विकास किसी भी जीव में होने वाले उन्नत दिशा में वे परिवर्तन हैं जिसके कारण उनकी आनुवंशिक क्षमता (जीनोटाइप) को कार्यशील परिपक्व प्रणाली (फेनोटाइप) में परिवर्तित किया जाता है।[1] जीनोटाइप किसी भी जीव को उसके माता-पिता से मिलने वाली वह क्षमता है, जिसको

उसके माता-पिता ने विरासत के रूप में एक लम्बी विकास-यात्रा के पश्चात् अर्जित किया है।[2] जबकि फेनोटाइप जीव की स्वयं अर्जित योग्यता है, जिसको उसने पर्यावरण से संघर्ष कर प्राप्त की है।[3] ये दोनों योग्यताएं मिलकर यह निश्चित करती है कि जीव, ईश्वर प्रदत्त जीवन की अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रस्थितियों में अपने आपको जीवित रख पता है अथवा नहीं। जो जीव इन दोनों क्षमताओं को अपने आप में समाहित कर लेता है, वह जीवन की संभानवाओं पर विजय प्राप्त कर, अपने द्वारा अर्जित शक्ति को अपनी सन्तति में प्रजनन के माध्यम से भावी पीढ़ी में स्थानान्तरित कर देता है और जो जीव अपने आप में इन दोनों क्षमताओं को समाहित नहीं कर पता, वह जीवन की क्रमिक वृद्धि में लुप्त हो जाता है। चार्ल्स डार्विन ने इस प्रक्रिया को **'प्राकृतिक चयन'** (natural selection) नाम दिया है।[4]

जब पृथ्वी पर जीवन की संभावनाओं ने जन्म लिया तब पृथ्वी पर अनेक प्रकार से जीवों की सृष्टि हुई। सांख्य-दर्शन में इनकी संख्या छः कही गई हैं। ऊष्मज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज, सांकल्पिक और सांसिद्धिक।[5] ऊष्मज सृष्टि के प्राणी वे होते हैं, जो ऊष्मा आदि से उत्पन्न पसीने या सड़न से उत्पन्न होते हैं। अण्डज सृष्टि के प्राणी अण्डे से उत्पन्न प्राणी हैं। जरायुज सृष्टि के प्राणी झिल्ली से उत्पन्न प्राणी हैं। उद्भिज जो जमीन से उत्पन्न होते हैं। सांकल्पिक जो बिना माता-पिता के ईश्वर के संकल्प मात्र से ही उत्पन्न हो जाते हैं तथा सांसिद्धिक अर्थात् जो अत्यन्त सिद्धि प्राप्त कर लेने पर अपनी इच्छानुसार शरीर धारण कर लेते हैं। पंचभूतों में इन सभी प्रकार की सृष्टियों का उपदान कारण पृथ्वी है, अन्य शेष भूत गौण कारण है।[6]

इन सभी सृष्टियों में मनुष्य जरायुज सृष्टि का प्राणी है और मनुष्य के लिए सांख्य-दर्शन में कहा गया है कि **'न देहमात्रतः कर्माधिकाररित्वं वैशिष्ट्यश्रुतेः''** अर्थात् केवल शरीरधारण करने मात्र से ही कर्म का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है। कर्म करने के लिए मनुष्य को शरीर से अतिरिक्त अनेक योग्यताएं एवं क्षमताएं विकसित करनी होती है अर्थात् अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करनी होती हैं। मनुष्य की जरायुज सृष्टि से सांसिद्धिक सृष्टि की सम्पूर्ण विकास यात्रा को जैविक परिवर्तन की दृष्टि से देखा जा सकता है। जैव-विकास की यह यात्रा एक जन्म से पूर्ण होने वाली यात्रा नहीं है। इसके लिए जीव को अनेक जन्मों से होकर गुजरना पड़ता है। इस यात्रा में जीव को केवल दो प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त होती है – प्रथम अपने आप को योग-मार्ग पर ले जाए और द्वितीय एक श्रेष्ट प्रजनन विधि का चुनाव करे। अपने आपको योग-मार्ग पर ले जाना ही जैव-विज्ञान में फेनोटाइप प्रणाली के रूप में और अपनी अर्जित क्षमताओं को जीन के द्वारा प्रजनन के माध्यम से अपनी सन्तानों को प्रदान करना जेनोटाइप प्रणाली के रूप में देखा जा सकता है।

मनुष्य का उद्देश्य केवल जन्म लेकर मृत्यु तक की यात्रा को पूरा करना नहीं है, अपितु यह एक पूर्ण वैज्ञानिक रूप से जैविक परिवर्तन के द्वारा अपने से उत्तम मनुष्यों को उत्पन्न कर उनको यौगिक सिद्धियों हेतु अनुकूल वातावरण प्रदान करना है, जिससे वे जरायुज से सांसिद्धिक सृष्टि को प्राप्त होकर स्वेच्छापूर्वक शरीर धारण कर अपने मूल उद्देश्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर सर्वदा आनन्द में रहें।[8] ऋग्वेद में भी कहा गया है **'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्'**[9] अर्थात् मनुष्य बन और उन्नत सन्तानों को उत्पन्न कर। यही मनुष्य का वास्तविक जैविक उद्देश्य कहा जा सकता है। इस उद्देश्य की सिद्धि केवल जन्म के पश्चात् और मृत्यु से पूर्व ही संभव हो सकती है। मृत्यु के पश्चात् जीव अपने अपूर्व के आधार पर, सूक्ष्म शरीर के बन्धन में, ऋत् की वैदिक व्यवस्था के अधीन होता है। इस अवस्था में वह केवल श्रेष्ठ गर्भ प्राप्ति की इच्छामात्र ही कर सकता है और यह इच्छा भी तभी पूर्ण हो सकती है जब उसने पूर्व-जन्म में अपने से उन्नत पुत्र-पुत्रीयों को जन्म दिया हो। अतः प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से मनुष्य के समाने मुक्ति का केवल एक ही विकल्प दिखाई देता है और वह है - योग के द्वारा स्वयं को सिद्ध कर अपनी सिद्धियों को प्रजनन क्षमता के माध्यम से अपनी सन्तानों में संस्कार के रूप में स्थानान्तरित कर दे।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह तो स्पष्ट है कि यदि मनुष्य अपनी जैव-विकास की यात्रा को अपने उत्कर्ष तक पहुँचाना चाहता है, तब उसे अपनी सम्पूर्ण यात्रा को दो विभागों में विभक्त करनी चाहिए – प्रथम, मनुष्य अपने

द्वारा अर्जित शक्तियों को संतानोत्पत्ति के माध्यम से भावी पीढ़ी को स्थानान्तरित करे और द्वितीय, योग के द्वारा जरायुज श्रेणी के प्राणी से सांसिद्धिक श्रेणी के प्राणी की सिद्धियाँ प्राप्त करे। इन दोनों विधियों को हम सांख्य-योग में वर्णित जैव-विकास क्रम के रूप में दो प्रकार देख सकते हैं –

1. **संस्कार रूप में प्राप्त शक्ति** – सांख्य-दर्शन में वर्णित सृष्टि विज्ञान में मनुष्य का आविर्भाव तीन प्रकार से बतलाया गया है – सांकल्पिक, जरायुज और सांसिद्धिक। आदि काल में सांकल्पिक सृष्टि हेतु ईश्वर ने श्रेष्ट पुरुषों को अपने संकल्प से उत्पन्न किया और वेदों का ज्ञान उनके अंतःकरण में प्रकाशित किया।[10] सांकल्पिक सृष्टि में ईश्वर सैकड़ों सहस्त्रों युवा मनुष्यों को उत्पन्न करता है।[11] इसके बाद जरायुज सृष्टि का आविर्भाव हुआ, जिसे मैथुनी सृष्टि भी कहते है, जिसमें माता-पिता मिलकर अपनी सन्तानों को उत्पन्न करते हैं।[12] इस क्रिया के निमित्त भारतीय शास्त्रों में वर्णित 16 संस्कारों में से गर्भाधान संस्कार को बहुत महत्त्व दिया गया है। गर्भाधान संस्कार के विषय में निरुक्त का ऋषि कहता है कि सन्तान, माता-पिता द्वारा अर्जित शक्तियों का संचित रूप होती है, जो एक प्रकार से उनकी ही आत्मा होती है।[13] इस विधि का आंशिक स्वरूप ही आधुनिक मानव-विज्ञान में जीनोटाइप प्रणाली के रूप में प्रचलित माना जा सकता है।
2. **अभ्यास-वैराग्य से प्राप्त शक्ति** – यह वह मार्ग है, जिसमें मनुष्य संस्कारों से प्राप्त शक्तियों की वृद्धि करता है। इस मार्ग पर वह स्वयं से अर्जित सिद्धियों को प्राप्त होता हुआ सांसिद्धिक सृष्टि की योग्यता को प्राप्त करता है। योगी फिर जरायुज सृष्टि का दास नहीं रहता। वह अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर नए-नए शरीर को प्राप्त होता हुआ अन्ततः मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। इस सृष्टि में योगी को किसी सांसारिक गुरु की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि सांकल्पिक और सांसिद्धिक सृष्टि में स्वयं ईश्वर ही गुरु होता है।[14] सांसिद्धिक सृष्टि से उत्पन्न योगी को अपने सभी पूर्व-जन्मों से प्राप्त ज्ञान एवं सिद्धियों का अनुभव रहता है।[15] इस विधि को योग-दर्शन में महर्षि पतंजलि ने अनुशासित किया है।[16] जैव-विकास की यह यात्रा अभ्यास एवं वैराग्य से आरम्भ[17] होती हुई, संस्कार से प्राप्त पूर्व जन्म की चित्त-वृत्तियों को रोकते हुए[18], अपने उत्कर्ष स्वरूप को प्राप्त कर लेती है।[19] इस विधि का आंशिक स्वरूप ही आधुनिक मानव-विज्ञान में फेनोटाइप प्रणाली के रूप में प्रचलित माना जा सकता है।

निष्कर्ष : इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सांख्य एवं योग दर्शन में मानवीय जैव-सृष्टि एवं विकास की जिस अवधारणा का वर्णन मिलता है उसे मानव जाति के उत्कर्ष को प्राप्त करने के लिए भारतीय ऋषियों ने 'सांख्य-योग' के रूप में समाज को दिया। वर्तमान विज्ञान भले ही जैव-विकास की अनेक अवधारनाएँ प्रस्तुत कर चुका है, परन्तु मानवीय जैव-विकास की सांख्य-योग की अवधारणा एवं मानवीय उत्कर्ष को प्राप्त करने की प्राकृत विधि है जो आज भी यथेष्ट एवं प्रासंगिक है। सांख्य-योग की मानवीय जैव-सृष्टि एवं विकास की अवधारणा के द्वारा ही मनुष्य अपने शरीर में उन सभी क्षमताओं एवं योग्यताओं को विकसित कर सकता है जिनके द्वारा वह अपने सर्वोच्च लक्ष्य 'मुक्ति' को प्राप्त कर, अपने द्वारा अर्जित शक्तियों एवं ज्ञान के द्वारा उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर, एक श्रेष्ट समाज को स्थापित कर सकता है।

शोध की भावी दिशाएं : प्रत्येक गृहस्थी अर्थात् पति-पत्नी हमेशा अपने द्वारा उत्पन्न सन्तानों का सर्वांगीण विकास चाहता है। वर्तमान विज्ञान ने जहाँ बच्चों के बौद्धिक विकास के लिए नए-नए प्रोग्राम विकसित किये है वहीं इस शिक्षण परिपाठी से बच्चों में अनेक शरीर सम्बन्धी रोग उत्पन्न भी हुए है, जेसे –बच्चों की छोटी उम्र में ही आँखों में दृष्टि दोष समस्या का बढ़ना। यदि सांख्य-योग की जैव-विकास पद्धति को शिक्षण के तीनों स्तरों अर्थात् स्मृति, बोध और चिन्तन स्तर पर विशेषज्ञों के द्वारा व्यवहारिक स्वरूप में लागू किया जाए तब सम्भावित परिणाम मानव-जैव विकास के अनुकूल दिखाई देते हैं। अतः इस दिशा में एक व्यापक एवं सतत् शोध की आवश्यकता प्रतीत होती है।

सन्दर्भ सूची :

1. Waddington, C. H. (2024, May 17). *Biological development*. Encyclopaedia Britannica. https://www.britannica.com/contributor/Conrad-H-Waddington/3085
2. Encyclopaedia Britannica. (2024, January 11). *Genotype*. Encyclopaedia Britannica. https://www.britannica.com/science/genotype
3. Encyclopaedia Britannica. (2024, January 11). *Phenotype*. Encyclopaedia Britannica. https://www.britannica.com/science/phenotype
4. A wide variety of features of the biological world could be simultaneously explained if all organisms were descended from a single common ancestor and modified by a process of adaptation to environmental conditions that Darwin christened "***natural selection***." *https://iep.utm.edu/darwin/*
5. ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जसांकल्पिक सांसिद्धिकंचेति न नियमः॥ - सांख्य दर्शन - 5/111
6. सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात्तद्व्यपदेशः पूर्ववत्॥ सांख्य दर्शन - 5/112
7. सांख्य दर्शन – 5/113
8. यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ यजु0 - 32/10
9. ऋग्वेद - 10/53/6
10. सरस्वती, दयानन्द (2005). *सत्यार्थ प्रकाश*, वैदिक प्रकाशन अजमेर, पृ0-235
11. सरस्वती, दयानन्द (2005). *सत्यार्थ प्रकाश*, वैदिक प्रकाशन अजमेर, पृ0-260, मनुष्या ऋषयश्च ये॥ *यजुः अ0* 31, मुंडकोप0 9, मुं0 2/7/1
12. सरस्वती, दयानन्द (2005). *सत्यार्थ प्रकाश*, वैदिक प्रकाशन अजमेर, पृ0-261, ततो मनुष्या अजाययन्त॥ *यजुर्वेद के शत0 ब्रा0 कां* 14 / प्रपा0 3 ब्रा0 2 / कं 5,
13. अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्॥ निरुक्त - 3/4
14. स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥ योग-सूत्र समाधिपाद सू0 – 26
15. भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम॥ योग दर्शन - 19
16. अथ योगानुशासनम्॥ योग दर्शन - 1
17. अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥ योग दर्शन – 12
18. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥ योग दर्शन – 2
19. तदा द्रष्टुः स्वरुपेऽवस्थानम्॥ योग दर्शन – 3

•